सतरंगी स्याही

काव्य संग्रह

कृति गुप्ता

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन

सतरंगी स्याही

काव्य संग्रह

कृति गुप्ता

अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन
वारासिवनी, मध्यप्रदेश

ISBN - " 978-93-5372-043-8"

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन

संपादक- प्रीति समकित सुराना

तकनीकी संपादक - संदीप कुमार सोनी

मुख्य कार्यालय - १५ नेहरू चौक, वारासिवनी, जिला बालाघाट (म.प्र.) ४८१३३१

दूरभाष- (कार्या.) ०७६३३-२५३१५६

मोबाईल- ६४२४७६५२५६

अणुडाक - antrashabdshakti@gmail.com

अंतरताना - www.antrashabdshakti.com

प्रथम संस्करण - २०१६, **कृति गुप्ता**

आवरण चित्र - **संदीप सोनी, वारासिवनी**

मूल्य - ६०.०० रूपये

मूद्रक- **शैलू कम्प्यूटर्स, वारासिवनी**

SATRANGI SHYAHI BY KRITI GUPTA

वैधानिक चेतावनीः- इस पुस्तक का सर्वाधिकार सुरक्षित है। लेखक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को फोटोकॉपी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रोनिक अथवा मशीनी किसी भी माध्यम में अथवा संग्रहण और पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा किसी भी रूप में पुनरूत्पादित अथवा संचारित प्रसारित नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत पुस्तक की समस्त रचनाएँ लेखक द्वारा अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन को प्रेषित की गई है। अतः प्रत्येक रचना की मौलिकता के किसी भी दावे हेतु लेखक जिम्मेदार है। प्रस्तुत पुस्तक के घटनाक्रम पात्र, भाषाशैली एवं स्थान सभी लेखक की कल्पना है। किसी भी प्रकार के वाद-विवाद के लिए प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

अंतर्मन से....

सम्पूर्ण सृष्टि के सृजन को ईश्वर ने कुछ न कुछ अनूठी सौगात दी है। हम मानव शायद सभी ईश्वरीय कृतियों में इसलिए भी श्रेष्ठ माने जाते हैं क्योंकि हम अपने मन को भाषा द्वारा प्रकट कर सकते हैं... कभी बोल कर और कभी एकांत में उमड़ती इंद्रधनुषीय भावनाओं को शब्दों के माध्यम से कागज पर उतार कर!

मामूली से जज़्बात के बाद मेरे इस द्वितीय कविता संग्रह में कहीं मेरे स्वर्गीय दादा जी जिन्हें 'बड़े पापा' कहती हूँ वो बूढ़ा बरगद बन शब्दों में बसे हैं तो कहीं महादेव शिव हमसे अनोखा वचन मांग रहे हैं...मन की इसी सतरंगी स्याही से हर रंग और कलेवर की भावनाएं इस कविता संग्रह में उकेरने का प्रयास किया है!

इस संग्रह को मूर्त रूप देने हेतु अंतरा शब्द्शक्ति प्रकाशन का हार्दिक आभार! आशा है अंतरा परिवार के मूल सिद्धांत को वरण करते हुए मेरे शब्द सदा शक्ति का सृजन करेंगे। मेरी यह सतरंगी स्याही बड़े पापा, बड़ी मम्मी और पापा मम्मी को समर्पित !!

सादर
कृति

अनुक्रमणिका

१	सृजन	७
२	सच्चा सोना	८
३	मेरे बड़े पापा	९
४	नारी इक्कीसवीं सदी की	१०
५	हलधर का हल	११
६	बूढ़ा बरगद	१२
७	विधान	१३
८	अनुभूति की गागर	१४
९	पीपल और बरगद	१५
१०	मैं सक्षम हूँ	१६
११	ढोंग	१७
१२	दायरा	१८
१३	शिव माँगें वचन	१९-२०
१४	स्पर्श	२१
१५	घर	२२
१६	ममता का बँटवारा	२३
१७	दहलीज	२४
१८	खुशियाँ	२५-२६

१६	शिकवा कलम का	२७–२८
२०	मगरूर	२६
२१	मौन के रूप	३०
२२	रात क्यों जरूरी	३१
२३	कुर्बानी	३२

सृजन

सम्पूर्ण सृष्टि के सृजन को
मिली अनोखी इक सौगात
हम मानव हैं श्रेष्ठ सभी में
क्योंकि हम कर सकते बात

बोल बोलें, मन वचन सभी
कागज पर उतार दें ये हाथ
सामर्थ्य है, कर सकें सृजन
शक्ति का शब्दों के साथ

भावनाओं के इस सागर में
हम गोते लगाते दिवस रात
पर यत्न हो हर प्रहर यह
शब्द न दें किसी को घात !

अंतस् की **सतरंगी स्याही**
रंग दे सभी के निशि प्रभात
शब्द हों सुगंध, प्रकाश पुंज ..
हो सृजन ही शारदा साक्षात् !!

सच्चा सोना

जीवन के कठिनतम पल में
जो मात पिता का मिले साथ
किंकर्तव्यविमूढ़ खड़ी, तब
वे बढ़ाते अपना सुदृढ़ हाथ
बस वही हाथ और वही साथ
मेरे जीवन का सच्चा सोना

जीवन की इस आपा धापी में
जीवनसाथी की कोमल छुअन
चकाचौंध भरी इस दुनिया में
मुस्काते रहते दो सरल नयन
बस वही छुअन और वही नयन
मेरे जीवन का है सच्चा सोना

अस्तित्व के दैनिक युद्ध में जब
विजयी होता निश्चल बचपन
जब माया में गिरती फँसती मैं
मुझे बचाए 'माँ' का संबोधन
बस वही बचपन, वही संबोधन
मेरे जीवन का है सच्चा सोना!

मेरे बड़े पापा

संसार का नियम है आना जाना
दुख और सुख का ताना बाना
घर के बड़े चले जाते हैं जब दूर
कितना कठिन है तब संभल पाना
याद करते हैं दी हुई उनकी हर सीख
कोशिश हो सदा उनके नाम को बढ़ाना
दूसरी दुनिया में गए जो बड़े पापा
फिर भी सदा पास ही उनको जाना
कितनी हैं यादें, पल कितने अनगिन
मौसम का पहला तरबूज उनसे पाना
गर्मी की छुट्टी में वो इंग्लिश पढ़ाते
डेबिट क्रेडिट की गुत्थी सुलझाना
हर इम्तिहान पर 'कैसा हुआ पर्चा?'
सवालों के क्या दिए जवाब, उन्हें बताना
टीचर से पहले ही पर्चा वो जांचें, फिर
रिजल्ट आने पर गुलाबजामुन मंगाना
इतने सालों में समय बहुत बदल गया
जीवन में पर्चो का बवंडर सा गढ़ गया
बड़े पापा आज भी हम पर मुस्काते हैं
हर दुविधा का हल वो अब भी बताते हैं!
ईश्वर से विनती यही हम करे
आप हर दम यूँ ही संग संग चलें
जो सीख हमें दी जीवन की अनमोल
हम बढ़ते रहें लगाए उनको गले।

नारी इक्कीसवीं सदी की

हां, मैं हूं नारी इक्कीसवीं सदी की..
पिछली पीढ़ी से कहीं ज़्यादा स्वच्छंद और सक्षम
जीवन उनसे कई गुना सुगम..
मैं आगई हूं पुरुषों के समकक्ष
हो गईं हूं उन जैसी ही दक्ष
ले सकती हूं जीवन के बड़े निर्णय
हर क्षेत्र में हुआ मेरी शक्तियों का उदय...
पर...हां, पर..
कहीं ना कहीं अब भी जकड़ी हूं
पिछली पीढ़ी के बनाए पाशों में
महसूस करती हूं अब भी घुटन सांसों में
कहने को आजाद तो हूं चुनने को अपनी राह,
और देने को अपनी अभिव्यक्तियां..
पर साहस दिखा, कुछ फैसले लूं.
तो तन जाती हैं अब भी भृकुटियां !
अब भी फूंक फूंक कर रखना पड़ता है हर कदम..
अब भी अपने अस्तित्व को साबित करना है हर दम!
कांच की दीवारों सी ये झूठ की दुनिया,
जहां से सच का शोर बाहर जा नहीं सकता ...
ये आधुनिक जीवन शीशे से यूँ लगे जैसे सपना सलोना
पर मैं हूं नारी इक्कीसवीं सदी की..
सौगंध ली है मैंने भी एक
प्रयास करती रहूंगी आख़िर दम तक
कि संस्कारों की लौ सदा जलाए रखूं
और इस शीशे को तोड़, पंख फैला
आकाश अपनी परवाज के साए में रखूँ !!

हलधर का हल

अपने लहू पसीने को जो अन्न बना दे
बंजर धरती से भी जो सोना उगा दे
जिसके होने से जीवन को शक्ति है मिलती
कोई तो उस किसान का भी भाग्य बदल दे

वो अपने हक की लड़ाई लड़ने से है डरता
जब जब सूखी हुई फसल को है देखता
ना पाता जब अपनी समस्या का कोई हल
तभी तो वो असहाय आत्महत्या है करता

किसी को ना दिखता अन्नदाता का रोता चेहरा
आज बन के रह गया वो बस राजनीति का मोहरा
हो तपती दोपहरी या कमर तक का पानी
सहता वो बारिश और सूखे का घात दोहरा

डूब गया वो कर में, क्या ब्याज क्या असल
भर पेट सबका वो, हुआ अपनी जमीं से बेदखल
ना प्रकृति साथ देती, ना रकम सही मिलती
हलधर की विकट समस्या का अब तो निकालो हल!

बूढ़ा बरगद

बरगद का वो पेड़ कोटरों में जिसकी
पलते हैं जीव अनगिन.. जिसने पोसा ना सिर्फ
अपनी कोंपलों को ही.. आश्रय दिया हर उस को
जो आया पास लिए आस..
सहे हर छोटे बड़े तूफान पर आंच ना आने दी
आंचल में पलते, छिपते किसी पर भी
समय बीता, सावन बीते बरगद अब बूढ़ा हो चला है..
ताकत तो नहीं है शिराओं में पर..
समय का दिया विवेक अब भी गाढ़ा सत बन बहता है
उससे ही फूटी कोंपले अब बन चुके हैं मजबूत दरख्त
फिर भी बेजान जड़ उंगलियों से सबको थामा है बूढ़े बरगद ने!
वैसे तो हर दरख़्त में बस चुका है अब एक अलग ही नया परिवार
पर नए बरगद भी तो नहीं छोड़ते वो जड़,
जो जुड़ी है बूढ़े बरगद से.. आख़िर शिराओं में वही रस है
वो मुखिया है, क्या हुआ गर बेबस है?
देखो ना!!
बूढ़े बरगद ने सबको समेट रखा है गूंथ रखा है सबको एक साथ!
वक्त के हर वार को ऐसे गुंथे परिवार सह जाते हैं
क्षय नहीं होते कभी और अक्षयवट-से पूजे जाते हैं!!

विधान

जीवन अब तक बीता है
नियम मानते निभाते
कुछ को किया स्वीकार..
तो कुछ बेमन से बस ढोते जाते

कभी मान लिया कानून बस
ना प्रश्न किए ना दिए तर्क
रह गए लकीर के फकीर
समझा नहीं सही गलत में फर्क

कभी दिखाया तनिक साहस
और लगाया विधान पर प्रश्नचिन्ह
बन विधाता अपने कर्मों का
रूढ़ियों को किया छिन्न-भिन्न

तुम ही बताओ अब मन
कैसे बात भला ये माने?
कैसे बैठे भाग्य भरोसे
जो कर्म की शक्ति जाने!

हर प्राणी के जीवन को
जो दे दे सदा सर्वदा मान
काल चक्र के संग जो बदले
है वही मानवता का विधान!

अनुभूति की गागर

कितनी सुन्दर तेरी ये आंखे, जिनमें बसते हैं स्वप्न अनंत,
कुछ तो सुकर्म होंगे, जो इस आल्हाद का नहीं है अंत
दिनभर के कोलाहल बाद मेरी गोद में होते जब तुम अबद्ध,
समेटती अनुभूतियों का सागर, आमोदित हो, रह जाती स्तब्ध!

कैसे जताऊं मन के वे एहसास कि जब पाती हूं तुम्हें सक्षम,
देखती हूं तुम्हें बढ़ते हुए आगे चुनौतियां सहज स्वीकारते तुम
अपने चातुर्य से अचंभित कर देते वो नटखट सी मुस्कान जब
मैं सोचूं ठगी सी, आखिर मेरा नन्हा इतना बड़ा हो गया कब?

काल चक्र की निर्बाध गति बोलो थमी कहां भला कभी?
मैं निमित्त हूं संघर्ष में तुम्हारे, तुम पूरे करो स्वप्न सभी!
मानव जन्म लिया है तुमने.. तुम अनुभूति का पर्याय हो
प्रेम, दया से तुम अपना लेना उन्हें भी जो असहाय हो।

एक ही आशा इस मां-मन की, अब सार्थक सदा करो तुम
मानवता का धर्म निभा कर जीवन सफल करो तुम
ये वसुधा है निज कुटुंब.. ध्यान रहे यह परिपाटी
एहसासों की गागर भर कर सींचना तुम ये माटी !

पीपल और बरगद

पीपल के पेड़ की डाली से वो पत्ता टूट गया
आँधियों से लड़ कर बचाने की कोशिश तो की थी..
पर आखिर वो साथ छूट गया..
रोया, बिलखा, चीखा सन्नाटों में
ढूँढा उसे सूखे पत्तों की आहटों में
पर ना पाया दोबारा..
हवाएं अब भी जोर पर थी, और पेड़ था बदहवास, बेचारा ..

कोई पेड़ को पत्ते का शोक मनाते देख रहा था,
वो आया, पेड़ को समझाया..
दुनियादारी की बातें, वक्त के साथ आगे बढ़ने के पाठ,
गीता के सार... पर कुछ काम न आया।

पेड़ अब भी आंसू बहाए जा रहा था,
आंधियां अब भी उसे छकाये जा रहीं थीं..
कुछ दिन ही बीते थे, उबरने को वक्त काफी नहीं हुआ था।

आदमी ने एक कोशिश और की...
और एक पीपल-सा दिखने वाला बरगद का पत्ता रख दिया
उस टूटे पत्ते की जगह और बोला, उसे भूलो अब.. ये देखो,
ये भी तो जंचता है.. अपना लो इसे, वक्त के साथ तो हर घाव भरता है।

पेड़ के आंसू सूख चले थे, हवाएं अब भी वहीं थीं..
उस नए पत्ते को देखा और शून्य में ताकता सोचने लगा..
'वो भी वक्त के सहारे घाव भरने की बाट जोह रहा होगा,
मेरा पीपल भी शायद कहीं बरगद हो रहा होगा...'

मैं सक्षम हूँ

हां,
अब सीखा है मैंने भी
आस लगाना स्वयं से, सराहना स्वयं को,
हर छोटी बड़ी उपलब्धि पर...
चाहे परिवार के लिए सेहत से भरे व्यंजन बनाना
या दफ्तर में अपने कार्य निष्ठा से निभाना...
अपने सामर्थ्य से मदद करना और करना प्रेरित उसको भी
जो प्रशंसा की आस में भूल बैठा स्वयं की शक्ति को ही...
जीवन के तीस सावन बीत गए समझने में ये
सुख नहीं दूसरों को रिझाने में उनकी सराहना पाने में..
सुख तो निहित है स्वयं की शक्ति पहचानने में,
अपने अस्तित्व का आशय जानने में
और जीवन में ऐसा कुछ कर जाने में
कि दिल भर जाए गहरे संतोष से!!
हां,
अब सीख लिया है मैंने भी
अपने प्रतिबिंब पर मुस्काना, ठोंकना पीठ स्वयं की ही
जब भी एक कर्तव्य पूर्ण हो पाता है!
कह कर देखो खुद से, 'मैं सक्षम हूँ, शक्ति हूँ'
फिर कितना उत्साह जीवन में भर जाता है!

ढोंग

दरवाजे पर उस दिन वो पानी मांगने आया था..
याद है अपना जवाब, 'जिसके यहां कर रहे हो काम
वहीं करवाओ पानी का इंतजाम!'
और वो जो जोड़ रहा था ईंट से ईंट तुम्हारे आशियाने की
ढूंढ के लाए थे टूटी बोतल, बारी थी उसे पानी पिलाने की..
याद है वो बाई जो रोज तुम्हारा मकान संवार कर घर बनाती है
तुम किट्टी का स्वांग रचा सको,
सो अपना मुन्ना बिलखता छोड़ तुम्हारे पकवान बनाती है
उसी बाई ने तन ढांकने जब पुराने कपड़े तुमसे थे मांगे
फटे, बेरंग से चीथड़े कुछ तुमने कर दिए थे आगे..
और जेठ की तपती धूप में मिला था जो रिक्शावाला
पांच रुपए भी ना छोड़े उसके देकर महंगाई का हवाला
हां, उन बेबस दिखने वाले कर्मठ मजदूरों का दिन आज मनाते हो
खोखले शब्द और आडंबर ओढ़ उनके हक की बात सुनाते हो??
कभी सोचा है गर अब तक तुमने उनको भी इंसान जो जाना होता
ये मजदूर दिवस जैसा फिर कोई ढोंग तुम्हें ना रचाना होता!!

दायरा

आज मां ने कायदा तोड़ा
अपना बनाया दायरा तोड़ा
निकल पड़ी अकेले घर से
चढ़ने वो मंच जो छूटा था डर से
आज पापा ने कायदा तोड़ा
अपना बनाया दायरा तोड़ा
खुद ही निकाला रेडियो पुराना
रफी के गाने फिर गुनगुनाना
आज दादी ने कायदा तोड़ा
अपना बनाया दायरा तोड़ा
प्यारी निशानी वो लाल जोड़ा
दादाजी की याद में ओढ़ा
आज भैया ने कायदा तोड़ा
अपना बनाया दायरा तोड़ा
मां दादी को बिठाया कोने
लगे वो सारे बर्तन धोने
आज दीदी ने कायदा तोड़ा
अपना बनाया दायरा तोड़ा
रात दो बजे अकेले ही भागी
पापा को बचाने सब लाज त्यागी
दायरे में रहना कायदे से रहना
यूं तो सबको ही सिखाया जाता है
पर अपनों की खातिर जो टूटे बंधन
तो सोचो क्या कुछ बिगड़ जाता है??

शिव मांगें वचन

कल रात स्वप्न में शिव आए
कुछ रुष्ट-रुष्ट वे नजर आए
मैं तो पुलकित आनंद भरी
दर्शन पाकर भव से ही तरी

पर आशुतोष को देख रुष्ट
भर अश्रु पूछा, 'क्या हुआ इष्ट'
'क्यों ये चंद्र मुख है रोष पूर्ण
क्या मेरी आराधना है दोषपूर्ण?
क्या अभिषेक का दुग्ध दही
बिल्व धतूरा थे नहीं सही?
बहती नदिया सा अर्पित जल
क्यों ना कर पाया तुमको शीतल?'

शिव देख मेरा मुख यूँ बोले
मेरे भक्त तो मुझसे भी भोले
पूजते हो तुम सब मुझको पर
क्यों छोड़ नहीं पाते आडम्बर?
दूध दही की नदिया बहाते हो
जल से भर भर नहलाते हो
कितने ही मेवे फल चढ़ाते हो
पर उस भूखे को दे ना पाते हो

हाँ, वही दीन जिसे दूर भगाते हो
वो भी है शिव समझ न पाते हो
तुमको दी मैंने ये सुंदर धरती
जो तुमने पल में मलिन करदी

जहाँ उगते थे सुंदर फूल कभी
वहाँ तुमने क्यों प्लास्टिक भर दी?
जलधि को भी जल हीन किया..
सागर जीवों का जीवन छीन लिया
फिर भी तुम क्यों इतना इतराते हो?
खुद को मेरा उत्कट भक्त बताते हो !!
तुम सबकी पीड़ा मैं हरण करूँ
घोर हलाहल का मैं वरण करूँ

पर आज शिव भी मांगे एक वचन
फिर शुद्ध करो ये जल ये पवन
फिर निश्चल प्रेम से भर लो मन
हर जन में करो तुम शिव दर्शन
जो तुम पूर्ण करो ये वचन सभी
कहलाओगे सच्चे शिव भक्त तभी!

स्पर्श

तप रही थी देह उस दिन
तेज ज्वर सिर चढ़ चुका था
चाहा था स्पर्श उसका पर वो
छोड़ मुझे आगे बढ़ चुका था
तब खुद ही खुद को सहला कर
बालों में खुद उंगलिया फिरा कर
संभाल लिया फिर खुद को यूँ ही
अपने तन मन का ताप भुला कर !
कभी अपने मन के पन्नों को
मैंने उसे पढ़ कर सुनाना चाहा,
मन के गहरे सब राज बता कर
उसे अपना हमराज बनाना चाहा
पर उसने कब भला सुनी किसी की
उसे तो बस अपना मन था सुनाना
तब मैंने भी अपने होंठ सी लिए...
क्योंकि मौन तो है औरत का गहना !!
तिनका तिनका फिर खुद को जोड़ा
स्वाभिमान का लहराता आंचल ओढ़ा
अपने शिखर को जब चली मैं चढ़ने
खुद को बनाया,फिर खुद ही को तोड़ा
अब आस नहीं कोई मुझे संभाले
जब जो आया,वही बन बैठा रोड़ा...
मेरे खुद के हाथ ही अब मेरा सहारा
खुद को अब अंतस् की ओर है मोड़ा!

घर

घर क्या है?
छत, दीवारें और ईंटों का ढाँचा?
या
लोग, लम्हे और रिश्तों का साँचा?

घर कैसा हो?
बड़ा, ऊँचा , ढेर पैसों से बनाया?
या
जीता, जागता..भले भरा हो किराया?

घर में कौन हो?
लोभ, स्वार्थ और दंभी आडम्बर ?
या
प्रेम, दया और संतोष का सागर?

घर कब तक है?
दौलत, शोहरत और रुतबे की रात तक?
या
हृदय, साँस और अपनों के साथ तक?

ममता का बंटवारा

हां, शाश्वत है मां की ममता
परम है मातृत्व की सत्ता
जीवन बीज के अंकुरण से
उसके फलदार वृक्ष बनने तक
मां की ममता ही है वास्तविकता !
पर, बहुत तेजी से बदल रहा है परिवेश
मातृत्व पिता में भी कर रहा है प्रवेश
क्यों ममता को मां शब्द से बांधना?
जब जीवन माता पिता की भावनाओं का समावेश..
मैंने देखा है, अपने पिता को मां की ही तरह
घर संजोते, हमारी जरूरतें संवारते
कई बार बेटियों के लिए आंसू बहाते
और पति को भी देखा है अनेकों बार
बेटे को रात रात भर लोरी सुनाते
देखा है दोनों का ही दिल गहरी ममता से भरते
और कई बार मां का धर्म मुझसे भी बेहतर निभाते
क्यों बांट दिया हमने भावनाओं को भी लिंगों में??
पुरुषत्व से भर दिया पितृत्व को
और ममता सीमित मां के आंचल में?
जीवन महकता दोनों के साए में
फिर सोचो क्यों बांट दिया ममता को भी दो भागों में??

दहलीज

दहलीज के दोनों ही पार
अपना कह सकूं, ऐसा घर ना होगा
कुछ आंसू तो अपनी विदाई पर
बस यही सोच कर बहा दिए...

फिर भी ताउम्र कर्ज रहेगा
मां बाबुल के खून पसीने का
जो बेटियों को बेटों मानिंद
पालने में उन्होंने बहा दिए...

ना जमीन जोड़ी ना जायदाद
ना जोड़ा कोई चांदी सोना
बस तालीम के अनमोल गहने
मुझे रुखसती में पहना दिए...

उस गहने को पहन कर
नाम अपना बनाया मैंने
उस तालीम के करम ने
नए घर में वंदनवार सजवा दिए...

अब तो मेरा भी है आशियाना
जिसपर तख्ती है मेरे नाम की
सरकारी ही सही पर देखो आज
खुद के घर के सुख दिखा दिए..

अब भरोसा है पूरा मुझको
उनकी सीख, अपनी मेहनत पर
खुद के घर की दहलीज की ओर
देखो, अपने कदम मैंने बढ़ा दिए...

खुशियां

तपती दुपहरी में जलता तन
जलते तन में धधकता मन
जिन्दगी की इस धूप में
यूं ही अचानक दौड़ते दौड़ते
पेड़ की घनी छांव जो मिल जाए

गरम हवा के थपेड़े खाते
तन मन को जब झुलसाते
मन आस लगाए बूंदों की
यूं ही अचानक मनाते मनाते
घनघोर बादल जो छा जाएं

कंक्रीट के जंगल घने
ऊंची ऊंची इमारतें तने
काग-कबूतरों के ठौरों में२
यूँ ही अचानक ढूंढते ढूंढते
छोटी सी गौरैया जो दिख जाए

घड़ी की सुईयों से मिलाते कदम
पहले पहुंचने की होड़ में हम
नौ की नोंक पर बंद होता गेट
यूं ही अचानक भागते भागते
सवा नौ पर जो खुला मिल जाए

बरसों किया जो तप कठिन
बस लक्ष्य को साधा रात दिन
भाग्य ने फिर भी दी नाकामी..
यूं ही अचानक लड़ते लड़ते
अपना नाम जो सुर्खियों में छा जाए
ये छोटे छोटे पलों में हैं बसतीं
ये खुशियां मन में ही तो पलतीं
हम धन दौलत में क्यों ढूंढें इनको?
जब यूं ही अचानक चलते चलते
ये आकर चुपके से गले लग जाएँ!!

शिकवा कलम का

कुछ रोज पहले वो बड़ी गुमसुम हो गई
देख कर यूँ इतना मशगूल मुझे..
मैं मसरूफ जिन्दगी की टैली शीट में
सुलझाने कई सवाल अनसुलझे
कुछ शिकवे दूर करने तन के
तो भरने कुछ घाव मन के
और उसने सोचा मुझे अब
ना रही पहले सी मोहब्बत
ना उससे लगाव रहा कोई,
और तो और कह पड़ी
कि अब मैं तराशती नहीं
उसकी खूबसूरती कभी...
नहीं सजाती अलंकारों से !
कि मुझे परवाह नहीं है कोई!
ना सुनती हूं आस पास की आवाज
ना सुनाती हूं उसे किस्से,मसले कोई!
अब कैसे समझाऊं नादान को
वो तो है मेरे दिल की झंकार!
मेरी लेखनी, मेरी पहचान
जिसमें बसता है मेरा संसार!
कोई ख़ास मसला, कोई किस्सा
ख़ास एहसास या घर का हिस्सा...

जब छेड़े मेरे दिल के तारों को
कागज पर तब ही उतरती है
मेरे दिल की वो मासूम झंकार!
वो क्यूं नहीं समझती कि गर
हर लम्हा, किस्सा, मसला, हिस्सा
यूं ही छेड़ने लगे दिल के तारों को
तो बंद हो जाएगी सुरीली झंकार
और रह जाएगा शोर... तेज शोर !!
शब्दों, अलंकारों और शिल्पों का
जो सिर्फ लोगों के कान चीरेगा
जो नहीं छू सकेगा एक भी मन
शोर जो बस चुभेगा कांटों सा...
पर क्या कभी बन पाएगा
जीते जागते एहसासों का चमन?

मगरुर

हां, मैं तो मगरुर हूं..
अपने ही नशे में चूर हूं
है ऐतबार खुद पर
रब से भी ज़्यादा
मैं अपनी ही आंखों का नूर हूं!

तुम समझो मुझे घमंडी
ये तुम्हारी अपनी मर्जी है
बहुत मुश्किल से कमाया
ये फक्र, जिसके लिए मशहूर हूं!

हर दम तुम्हारे पैमानों पर
तौला तुमने और भर दिया
मुझमें कमतरी का जहर
जिसे काटने को अब मजबूर हूं!

कितनी ही बार ख़ाक किया
खुद को, पर अब सीखा है
फीनिक्स मानिंद ख़ाक से ही
फिर पैदा होना, इसीलिए मगरुर हूं!!

मौन के रूप

मौन के हैं रूप कई
मौन के हैं रंग अनेक
ये है कभी एक भाषा
कि जिसमें तैरते नहीं
स्वर, व्यंजन या शब्द
भाषा ऐसी जो गूंजती है
सिर्फ और सिर्फ गहरी
भावनाओं, संवेदनाओं से!
शब्दों में जब बंधे ना मन
अधर अपना ले मौन जब
शोर मचा कर व्यक्त करते
सारे रहस्य ये नयन तब...
भीतर का प्रगाढ़ प्रेम कभी
तो कभी असहनीय पीड़ा भी
कभी मौन है ज्वलंत आक्रोश
तो कभी करे गंभीर प्रश्न भी
मौन में है ऐसी धार
जिसके आगे फीकी तलवार
पर बड़बोले से इस संसार में
आसान नहीं धरना इसे..
मौन है एक साधना भी
तपाना पड़ता है जिभ्या को
सोचे बोलने से पहले बार बार
और शब्द जब भी हों शिथिल
तब मौन से हो प्रबल वार !

रात क्यों जरूरी

ऐ रात!
क्या बताया किसी ने
तू आखिर है कितनी जरूरी?
तेरे दस्तक देने पर ही तो
मिटती है खुद से खुद की दूरी

ऐ रात!
तेरी स्याह घनी खामोशी में
इतना गहरा तेरा हर लम्हा
कभी रोशन अपने चांद संग
तो कभी बस, अकेली.. तन्हा!

ऐ रात!
तू कभी जैसे अनगिनत
तारों की खुशनुमा बारात
तो कभी बस, सीलती रहे
याद कर जख्मी जज्बात!

ऐ रात!
तुझे अंदाजा भी है
तूने कितने घाव भरे हैं?
कितनों को मिलवाया खुद से
खुद को पाकर, कितने तरे हैं?

ऐ रात!
क्या बताऊं तेरे कितने नाम
तू प्यार में डूबा हमदम
तू ही टूटे दिल का मरहम
तू मेहनतकश का आराम
तू ही खुद को पाने का मुकाम!

कुर्बानी

एक वो था कि जिसने कभी
वतन से आगे कुछ ना सोचा
एक हम हैं कि हर दम हमने
खुदगर्जी में वतन को सिर्फ नोंचा
एक वो था कि जिसने गले लगाया
मौत को... कि मिट्टी आजाद हो
एक हम हैं कि जो हैं आमादा
काटने में गला.. चाहे मां बर्बाद हो
एक वो था कि जिनकी चाहत
वतन बस हमारा हो, हमसे बने
एक हम हैं कि जो बन बेहया
वतन को अपने ही लगे बेचने
है शहीद वो..कभी 'था' ना होगा
वतन आज भी उसमें धड़कता होगा
जो मौत से भी ना डरा, ना सहमा
जरूर इस दर्द से भर उठता होगा
भूखे बच्चे हैं आज भी सड़कों पे
आज भी लुटती बेटियां सरे बाजार
जितने बेबस थे तब हुकूमत के आगे
आज अपनों के ही बीच हैं लाचार
फिर सोने की चिड़िया हो जिंदा
कुछ ऐसी नई पहल कर दो
उन आजादी के दीवानों की
कुर्बानी अब तो मुकम्मल कर दो!

व्यक्तित्व दर्पण

नाम - कृति गुप्ता

जन्मतिथि - 29.10.1986, संगम नगरी, प्रयागराज (इलाहाबाद) उ.प्र.

शिक्षा - एम.एस.सी. (बायोइंफॉर्मेटिक्स) काशी हिन्दू वि.वि. वाराणसी
बी.एस.सी. (बायोटक्नोलॉजी) इलाहाबाद कृषि वि.वि., नैनी, इला.।

निवास - ई 76, पूसा केम्पस, नयी दिल्ली 110012

फोन नं. - 9818991159

ई मेल - kritiguptablog@gmail.com

कार्य - कृषि एवं किसान विकास मंत्रालय की स्वायत्त संस्था -
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान में सहायक के पद पर कार्यरत्

प्रकाशन - मामुली से जज़्बात (काव्य संग्रह) अंतरा शब्दशक्ति प्रकाशन।
लोकजंग समाचार पत्र, अमर उजाला, अंतरा शब्दशक्ति वेब अंक में रचनाऐं प्रकाशित।

सम्मान - स्नातक व परास्नातक दोनो में ही विश्वविद्यालय में सर्वाधिक अंक हेतु स्वर्ण पदक
हिन्दी प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत ।
अंतरा शब्द शक्ति सम्मान 2019।

यदि आप अंग्रेजी में हस्ताक्षर करते हैं तो निवेदन है कि 'हिन्दी में हस्ताक्षर करें', आपकी यह छोटी-सी कोशिश हिन्दी को राजभाषा से राष्ट्रभाषा बनाने में अमूल्य योगदान देगी ।

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com

१५, नेहरु चौक, मेन रोड वारासिवनी, जि. बालाघाट (म.प्र.) पिन ४८१३३१,
संपर्क- ९४२४७६५२५९, अणुडाक: antrashabdshakti@gmail.com

978-93-5372-043-8

मूल्य 60/-

शब्द सुगंध